समय-पूर्व जन्मे शिशुओं की आंख पर नज़र

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

प्रत्येक नवजात बच्चा खुशियां लेकर आता है, लेकिन साथ ही उसे प्यार और देखभाल की भी ज़रूरत होती है। भारत में प्रतिदिन 10,000 से ज़्यादा बच्चे जन्म लेते हैं। इनमें से अधिकांश पूरे समय में अर्थात 38-40 हफ्तों की गर्भावस्था के बाद पैदा होते हैं। मगर दस में से एक का जन्म समय से पहले हो जाता है। ये समय-पूर्व बच्चे 37 हफ्तों से पहले ही जन्म ले लेते हैं। इन्हें अपरिपक्व (प्रीमीज़) कहा जाता है। जो 35-37 हफ्ते से पहले जन्म ले लेते हैं उन्हें थोड़ा अपरिपक्व कहा जाता है। 32 हफ्तों से पहले जन्म लेने वाले बच्चों को मध्यम अपरिपक्व और 28 हफ्तों से पहले जन्म लेने वाले बच्चों को अत्यंत अपरिपक्व कहा जाता है। इन सभी को सामान्य तंदुरुस्ती तक लाने के लिए कम-से-कम एक महीना (या शायद ज़्यादा समय तक) विशेष देखभाल की ज़रूरत होती है।

जब बच्चा मां की कोख में पलता है तब उसे मां के रक्त से पोषण प्राप्त होता है जो सारे ऊतकों, अंगों और हाथ-पैरों को बनाने में भी मदद करता है। इसके लिए गर्भावस्था की पूरी अवधि की ज़रूरत होती है। समय-पूर्व शिशुओं में यह विकास प्रसव जल्दी हो जाने के कारण रुक जाता है और इस कारण बच्चे के विकास को पूरा करने के लिए बाहरी मदद की ज़रूरत पड़ती है। यह बाहरी मदद बच्चे को हॉस्पिटल इनक्यूबेटर में रखकर दी जाती है। इस प्रकार के इनक्यूबेटर बच्चे को गर्म रखते हैं। समय-पूर्व जन्मे बच्चे की त्वचा का रंग पित्त रंजकों की उपस्थिति की वजह से कुछ हद तक पीला होता है जिसे ठीक करने के लिए चमकदार ठंडे नीले फ्लोरेसेंट लैंप की रोशनी दी जाती है। और ज़रूरी होने पर सतत ऑक्सीजन भी दी जाती है।

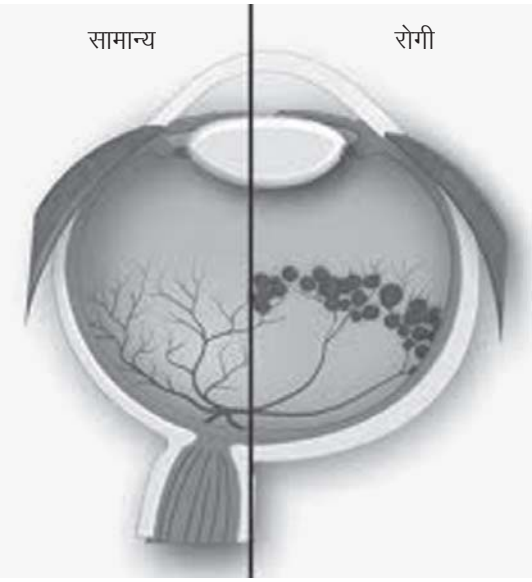

विशेष रूप से एक प्रमुख अंग जिस पर सबसे ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत होती है वह है समय-पूर्व जन्मे बच्चों की आंखें। मां की कोख में बच्चे की आंखें गर्भ के 16वें हफ्ते में विकसित होना शुरू हो जाती हैं। रेटिना (यानी आंख के पीछे का पर्दा, जहां तस्वीर बनती है और प्रकाश तंत्रिका के ज़रिए इसकी जानकारी मस्तिष्क को भेजी जाती है) की रक्त वाहिनियां बनने लगती हैं। ये रक्त वाहिनियां आंखों को ऑक्सीजन और पोषक तत्व पहुंचाती हैं। इसके बाद के 12 हफ्तों में आंखें बहुत तेज़ी से विकसित होती हैं और यह विकास पूरी गर्भावस्था तक जारी रहता है। यह विकास जन्म के 4-6 हफ्तों बाद पूरा हो पाता है।

किसी भी समय-पूर्व शिशु में रक्त वाहिनियों का यह विकास अधूरा रह जाता है। रेटिना के बाहरी हिस्सों में पोषण और ऑक्सीजन का अभाव रहता है। इसका नतीजा यह होता है कि आसामान्य और ऐंठी हुई रक्त वाहिनियां बनने लगती हैं। इसके चलते रेटिना का पर्दा कमज़ोर रह जाता है। ऐसी स्थिति में रेटिना पर खरोंचे बन जाती हैं, वह खिंचकर अपनी स्थिति से हट जाता है और जन्म के कुछ ही हफ्तों बाद रेटिनल डिटेचमेंट की स्थिति पैदा हो सकती है। समय-पूर्व नवजात की आंख में इस विकार को रेटिनोपैथी ऑफ प्रीमेच्योरिटी (आरओपी) कहते हैं। यह बच्चे की दृष्टि

के लिए बड़ा खतरा होता है। भारत में प्रतिदिन हज़ारों समय-पूर्व बच्चे जन्म लेते हैं, इसलिए आरओपी ने महामारी का रूप ले लिया है। डॉ. सुभद्रा जलाली का अनुमान है कि भारत में आरओपी का प्रकोप पहले से ही 20-40 प्रतिशत है और सन 2020 तक स्कूल में दाखिला लेने वाले 50,000 स्कूली बच्चे इससे प्रभावित होंगे।

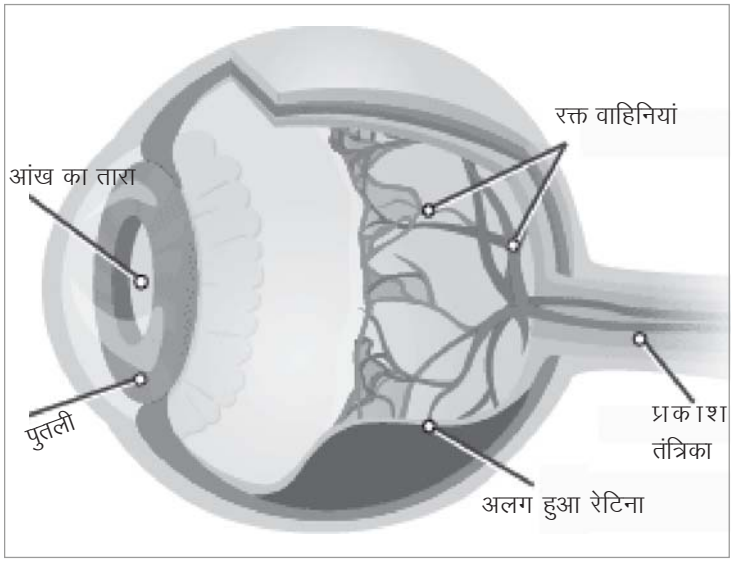

खुशी की बात यह है कि यदि समय से यानी बच्चे के जन्म के 20-30 दिनों के भीतर इस विकार का पता चल जाए तो आरओपी का इलाज और प्रबंधन संभव है। इन 30 दिनों को 'तीस दिन रोशनी के' कहा जाता है। पिछले 20 सालों में आरओपी की मरम्मत के लिए अत्यंत कारगर, वैज्ञानिक तौर पर जांची-परखी और सुलभ तकनीक उपलब्ध हो गई है। कई बहु-केंद्रीय अध्ययनों ने प्रमाणित कर दिया है कि समय से निदान और प्रबंधन की मदद से आरओपी के कारण होने वाले अंधेपन को कम किया जा सकता है। एक अनुमान के मुताबिक 60 प्रतिशत से ज़्यादा बच्चों में देखने की क्षति का समय रहते पता लगने पर उसे ठीक किया जा सका है।

यह भी खुशी की बात है कि भारत में आरओपी विशेषज्ञ और नवजात शिशु विशेषज्ञ मिलकर इस तरह का प्रयास पिछले 15 सालों से कर रहे हैं। उदाहरण के लिए कई गैर सरकारी संगठनों, व्यक्तियों और आंध्र प्रदेश (तेलंगाना समेत) सरकार के समर्थन से राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत 10,000 से ज़्यादा बच्चों की जांच आरओपी के लिए की गई है। इस कार्यक्रम को भारतीय जुड़वां शहर समय-पूर्व बच्चों में रेटिनोपैथी की जांच (ITCROPS) का नाम दिया गया है।

यह अब राष्ट्रीय स्तर का कार्यक्रम बन गया है जिसे केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय का समर्थन प्राप्त है। पूरे देश में आरओपी विशेषज्ञ और नवजात शिशु विशेषज्ञ कंधे से कंधा मिलाकर काम करते हैं। भारत में स्कूल में दाखिला लेने वाले 50,000 बच्चे आरओपी से प्रभावित होते हैं और इस तरह की राष्ट्रीय स्तर की पहल एक अच्छा कदम है। आरओपी विशेषज्ञों ने दो हफ्तों पहले इस पर एक बैठक रखी थी जिसमें आरओपी के विश्व विशेषज्ञों जैसे सिंगापुर के डॉ. लिंगम गोपाल और मिशिगन के डॉ. माइकल ट्रेसी ने भारत में किए जा रहे इस प्रयास की सराहना की और इस कार्यक्रम को अपना पूरा समर्थन देने का वादा किया है।

आजकल अधिकांश सरकारी व निजी अस्पताल अब अपने बाल रोग और नवजात शिशु वार्ड में नियमित रूप से इंक्यूबेटर और सम्बंधित यंत्र रखते हैं। लेकिन इनमें से कई को अभी भी आरओपी की जांच के लिए अपने नवजात शिशु विशेषज्ञों को ट्रेनिंग देने की ज़रूरत है। सुभद्रा जलाली को शिकायत है कि "इंक्यूबेटर कंपनियां बाल रोग क्लीनिकों में केवल मशीन लगाकर चले जाते हैं। यदि वे थोड़ा समय निकालकर इन यंत्रों के साथ आने वाले ज्ञान व विज्ञान के बारे में पूरी जानकारी और प्रशिक्षण दें तो आरओपी के प्रबंधन में मदद मिलेगी।" ***(स्रोत फीचर्स)***